ओ३म्

वैदिक साधना पद्धति

सम्पादक : ब्र. अरुणकुमार "आर्यवीर"

पूर्व प्रकाशित : २०००
परिवर्द्धित द्वितीय संस्करण २००० प्रति
प्रकाशन तिथि : चैत्र २०७२ विक्रमी

आर्यवीर प्रकाशन

पुनीत प्लाझा फ्लैट १, प्लॉट १५,
सेक्टर ३०, सानपाड़ा, नवी मुम्बई ४००७०५
दूरभाष : ७७३८२४४१९७, ७६६६९८६८३७
E-mail : 1aryaveer@gmail.com
Web : www.santasa.org

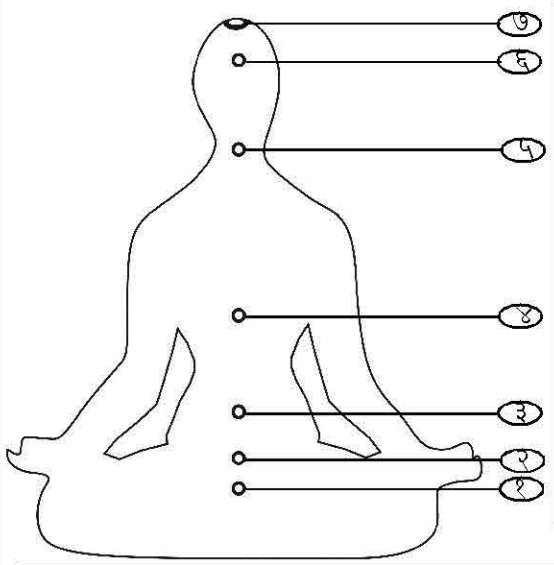

७	सत्यम्	आनन्दमय	दयालु		अभय		सत्यम्
६	तपः	विज्ञानमय	न्यायकारी	अजन्मा	अमर	नित्य	ज्ञानम्
५	जनः	मनोमय	सर्वशक्तिमान्	अनन्त	अजर	पवित्र	अनन्तम्
४	महः	प्राणमय	निराकार	निर्विकार	सर्वान्तर्यामी	सृष्टिकर्ता	ब्रह्म
३	स्वः	अन्नमय	आनन्द	अनादि	सर्वव्यापक		
२	भुवः		चित	अनुपम	सर्वेश्वर		
१	भूः		सत्	सर्वाधार			

चित्त की पांच अवस्थाएं

क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र, निरुद्ध।

१. **क्षिप्त** : (रजोगुण + तमांगुण) ऐश्वर्य एवं विषयप्रियता। २. **मूढ़** : (तमोगुण) अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य, अनैश्वर्य। ३. **विक्षिप्त** : (सत्वगुण + रजोगुण) धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य। ४. **एकाग्र** : (सत्वगुण) १) वस्तु के यथार्थ स्वरूप को जनानेवाला चित्त, २) क्लेशों का क्षीण याने कमजोर होना, ३) बांधनेवाले कर्मों का शिथिल हो जाना, ४) चित्त का निरुद्ध अवस्था में पहुंच जाना। इसे सम्प्रज्ञात योग भी कहते हैं। सम्प्रज्ञात योग के चार भेद १} वितर्क, २} विचार, ३} आनन्द, ४} अस्मिता। ये सबीज समाधियां हैं।

५. **निरुद्ध** : (त्रिगुणातीत अवस्था = आधार कारण प्रकृति) निर्बीज असम्प्रज्ञात समाधि (योगदर्शन समाधिपाद व्यासभाष्य सूत्र १—२)

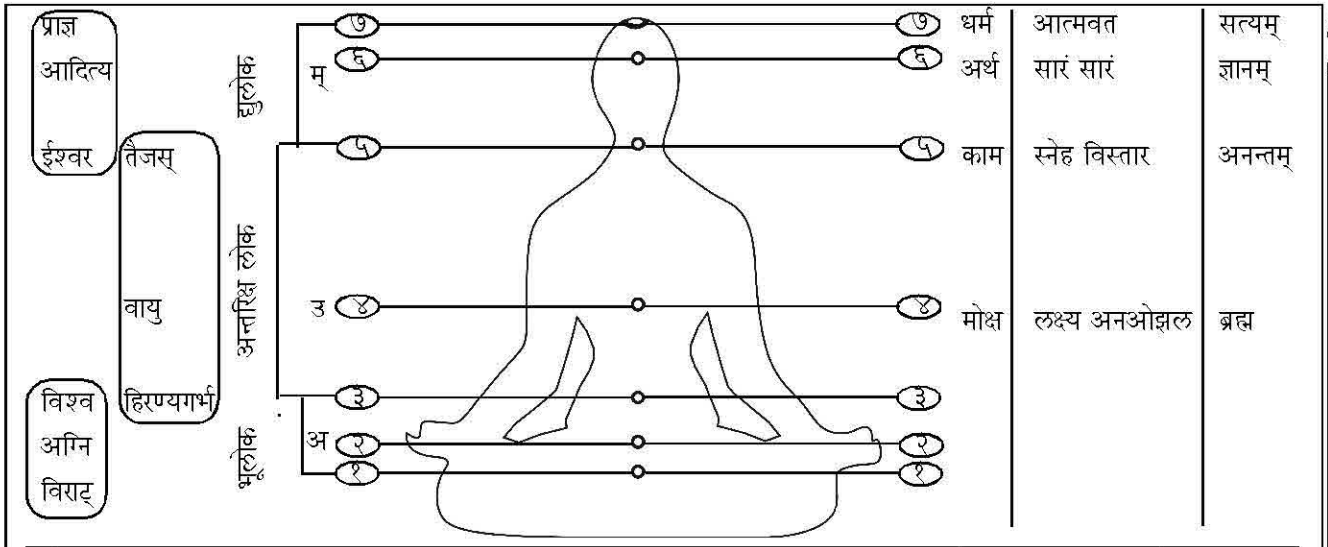

			अग्ने नय					
७	सत्यम्	आनन्द	स नो बन्धुः			उद्वयं तमसस्परि		
६	तपः	विज्ञान	प्रजापते	सहोऽसि	ऊर्ध्वा दिग्विष्णुः	उदुत्यं जातवेदसम्	सुषारथिरश्वानिव	
५	जनः	मन	येन द्यौरुग्रा	मन्युरसि	ध्रुवा दिग्विष्णुः	चित्रं देवानाम्	यस्मिनृचः साम	आकाश
४	महः	प्राण	यः प्राणतः	ओजोऽसि	उदीची दिक्सोमः	तच्चक्षुर्देवहितम्	येनेदं भूतम्	वायु
३	स्वः	अन्न	य आत्मदा	बलमसि	प्रतीची दिग्वरुणः		यत्प्रज्ञानमुत चेतः	अग्नि
२	भुवः		हिरण्यगर्भः	वीर्यमसि	दक्षिणा दिगिन्द्रः		येन कर्माण्यपसः	जल
१	भूः		विश्वानि	तेजोऽसि	प्राची दिगग्निः		यज्जाग्रतो दूरम्	पृथ्वी

साधना से मुक्ति

योगश्चित्तवृत्ति निरोधः। (योग १.२)

मनुष्य रजोगुण, तमोगुणयुक्त कर्मों से मन को रोक, शुद्ध सत्वगुणयुक्त कर्मों से भी मन को रोक, शुद्ध सत्वगुणयुक्त हो पश्चात् उसका निरोध कर, एकाग्र अर्थात् एक परमात्मा और धर्मयुक्त कर्म इनके अग्रभाग में चित्त का ठहरा रखना निरुद्ध अर्थात् सब ओर से मन की वृत्ति को रोकना। (स.प्र. नौवां समुल्लास) महर्षि दयानन्द सरस्वती

जब उपासना करना चाहे तब एकान्त शुद्ध देश में जाकर, आसन लगा, प्राणायाम कर बाह्य विषयों से इन्द्रियों को रोक, मन को नाभिप्रदेश में वा हृदय, कण्ठ, नेत्र, शिखा अथवा पीठ के मध्य हाड़ में किसी स्थान पर स्थिर कर अपने आत्मा और परमात्मा का विवेचन करके परमात्मा में मग्न होकर संयमी होवे। (स.प्र.सातवां समु., म. दयानन्द जी)

अथ यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म दहरोऽस्मिन्नन्त-राकाशस्तस्मिन् यदन्तस्तदन्वेष्टव्यं तद्वाव विजिज्ञासितव्यमिति।। (छान्दोग्य. ८/१/१) जिस समय इन सब साधनों से परमेश्वर की उपासना करके उसमें प्रवेश किया चाहें उस समय इस रीति से करें कि **(अथ यदिद.)** कण्ठ के नीचे दोनों स्तनों के बीच में और उदर के ऊपर जो हृदयदेश है जिसको ब्रह्मपुर अर्थात् परमेश्वर का नगर कहते हैं, उसके बीच में जो गर्त है उसमें कमल के आकार वेश्म अर्थात् अवकाशरूप एक स्थान है, और उस के बीच में जो सर्वशक्तिमान् परमात्मा बाहर-भीतर एकरस होकर भर रहा है, वह आनन्दस्वरूप परमेश्वर उसी प्रकाशित स्थान के बीच में खोज करने से मिल जाता है। दूसरा उसके मिलने का कोई उत्तम स्थान वा मार्ग नहीं है। (ऋग्वेदादि भा.भू. उपासना विषय, म.दयानन्द जी)

यदोपासको योगी उपासनां विहाय सांसारिक व्यवहारे प्रवर्त्तते तदा सांसारिक जनवत् तस्यापि प्रवृत्तिर्भवति आहोस्विद् विलक्षणेत्यत्राह- "वृत्ति सारूप्यम् इतरत्र।" (योग. १/४) **इतरत्र सांसारिक व्यवहारे**